**अज्ञेय कृत ‘असाध्‍य वीणा’ का पुनर्पाठ**

**श्याम शंकर सिंह**

प्रोफ़ेसरएवंभाषा संकायाध्यक्ष,

राजीव गांधी विश्वविद्यालय

दोईमुख,पापुमपारे,अरुणाचल प्रदेश

**ऐब्स्ट्रैक्ट**

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन “अज्ञेय”हिंदी साहित्य के युगप्रवर्तक साहित्यकारों में मान्य हैं।उन्होंने जो भी रचना की उसमें यह संकल्प निहित था कि रचना की परम्परा में कुछ अंशदान किया जाए ।आत्मदान ही उनका लक्ष्य रहा है ।“असाध्य वीणा” भी इसका साक्ष्य है ।यह कविता हिंदी काव्यधारा में ,हिंदी की महत्वपूर्ण लम्बी कविताओं में अनिवार्य रूप से उल्लेखनीय मानी जाती है ।इस कविता में अज्ञेय के कवि रूप की उत्कृष्ट झलक दिखती है ।असाध्य वीणा से अज्ञेय काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति को दर्शाया जा सकता है ।इसीलिए इसे अज्ञेय की प्रतिनिधि काव्यरचनाओं में,चयनित रचनाओं में सम्मिलित किया जाता है ।यह “द टेमिंग अव द हार्प”पर आधृत मानी जाती है ।रामकथा पर आधृत वाल्मीकि कृत रामायण,भवभूतिकृत उत्त्तर रामचरित और गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस बेजोड़ कृतियाँ मानी जाती हैं ।असाध्य वीणा की अद्वितीयता और वैशिष्टय ऐसा ही है । भोलाभाई पटेल ने इसे सम्यक् रूप से दर्शाया है ।इन्हीं सब संदर्भों को लेकर असाध्य वीणा का पुनः पाठ उल्लिखित है,मर्म को पकड़ने की चेष्टा उल्लिखित है ।यह कविता कविता की रचना प्रक्रिया के बारे में भी है, कविता के रचनात्मक क्षण कैसे पकड़ में आते हैं इसे सम्प्रेषित करने की चेष्टा भी है ।रचना जिस समय सम्प्रेषित हो रही होती है उस समय महामौन की महती भूमिका होती है ।रचनात्मक अवधान में महाशून्य की महती भूमिका होती है ।सब कुछ की तत्त्वता रचनात्मक कल्पना में ढल कर प्रत्यक्ष होने लगती है ।सब कुछ की तत्त्वता की मानस साक्षात्कारमूलक प्रतीति न हो तो वह साधक की मनोभूमि होगी -रचनाकार की नहीं!फिर वह साहित्य मीमांसा और समालोचना की सीमा के भीतर भी न होगा ।

**की वर्ड्ज़ :**असाध्य,पाठ,सहृदय,साधक,प्रियंवद,किरीटी,नाग लोक,वासुकि,महाशून्य,महामौन,तथता

 फिर से पढ़ने से आशय है पहले पढ़े हुए और फिर से पढ़े के बीच विद्यमान अंतर को महसूस करते हुए लिखने के औचित्य की आवश्यकता की अनुभूति होना!पहले हुई व्याख्या में कुछ जोड़ने के भाव से पुनर्व्याख्या की ओर प्रवृत्त होना ! अज्ञेय की कविता ‘असाध्‍य वीणा’के वैशिष्‍ट्य का निरूपण करने के लिए उसके पाठ से गुजरना उचित होगा। सहृदयतापूर्वक किये गए पाठ से उसकी महत्‍ता को भलीभांति दर्शाया जा सकता है। विवेचना को प्रामाणिक बनाने के लिए यह एक उपाय भी है।

‘असाध्‍य वीणा’ कविता के आरंभ में नाटकीयता पाई जाती है। इस नाटकीयता के कारण पाठक और घटना के समय के मध्‍य विद्यमान अन्‍तराल से आए व्‍यवधानों का निराकरण हो जाता है। कविता के अन्‍त में एक बार फिर से कवि का ध्‍यान इस ओर गया है कि पाठक और घटना के समय के मध्‍य विद्यमान अन्‍तराल से आए व्‍यवधानों का निराकरण किया जाए।

कविता के आरंभ में जिस आमंत्रित साधक का उल्‍लेख है, उसका नाम प्रियवंद है। कवि ने स्रोत कथा में वर्णित पीवो को थोड़े से ध्‍वनि साम्‍य का आधार लेते हुए प्रियवंद नाम रख दिया है। लेकिन यह नाम कलाकार रूप का भी द्योतक है। प्रियवंद अर्थात् प्रिय बोलने वाला । यह रूप कला का भी है। कला के रूप में अप्रिय लगने वाली वस्‍तुएँ भी प्रिय का रूप धारण कर उपस्थि‍त होती हैं। केशकंबली विशेषण साधक रूप का द्योतक है। भेड़ चराने के समय कंटीली झा‍ड़ि‍यों में जिन भेड़ों के रोएँ उलझ जाते थे, केशकंबली उन्‍हीं रोओं को बीनकर कंबल बनाकर पहनता था।इसी सेसाधक का नाम केशकंबली पड़ गया। ‘गुफा-गेह’ से गुफा को घर मानकर रहने वाले व्‍यक्ति के गुफावासी रूप को, उसके भीतर के रचनाकार रूप को व्यंजित किया गया है।

राजा के द्वारा साधक को आसन देते हुए दिखाया गया है। वह साधक को ‘तात’ कहकर संबोधित करता है। अर्थात् राजा के मन में उसके लिए आदर भाव है। राजा ने उसे आमंत्रित किया था। वह उसके आमंत्रण को स्‍वीकार करते हुए राज दरबार में आ पहुँचता है। राजा उसकी इस प्रतिक्रिया से आह्लादित हो उठता है। उसे अब विश्‍वास हो जाता है कि वीणा के सधने को लेकर उसके मन में जो अभिलाषा विद्यमान थी वह अब अवश्‍य पूरी हो जाएगी।

 राजा के हल्‍के से इशारे को समझकर राज सेवक दौड़ पड़ते हैं। वे वहाँ जा पहुँचते हैं जहाँ वीणा संभालकर रखी गयी थी । सेवक उसे वहाँ से उठाकर राज दरबार में आ जाते हैं। वे उसे साधक के सामने रखकर वहाँ से हट जाते हैं। सभा में उपस्थि‍त लोगों की आँखों में उत्‍सुकता झलकने लगी थीं कि देखें, अब क्‍या होता है। अर्थात् अब तक तो वीणा सध नहीं पायी ।क्या अब सध पाएगी? सभा में उपस्थित लोगों ने एक बार वीणा को देखा और फिर साधक के चेहरे पर अपनी आँखें टिका लीं। अर्थात् सभी उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगे जब वीणा सधेगी।

राजा ने वीणा का परिचय कराते हुए उसके देश, काल और वातावरण के बारे में बताते हुए कहा कि इसे बहुत समय पहले उत्‍तराखण्‍ड के पर्वतीय प्रदेश से लाया गया था। उस प्रदेश के घने वनों में व्रत का पालन करने वाले व्रती तपस्‍या करते हैं। अर्थात् देवभूमि तपोभूमि है। वीणा के इतिहास के बारे में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्‍त न हो सकी, लेकिन इतना अवश्‍य सुनने में आया कि वज्रकीर्ति नामक साधक ने इसे बहुत ही पुराने किरीटी वृक्ष से रचा था। यहाँ कवि ने स्रोत कथा में उल्लिखित किरी नामक वृक्ष में निहित ध्‍वनि को लेते हुए किरीटी शब्‍द का निर्माण किया है। लेकिन यह विशेषणके रूप में भी प्रयुक्‍त हुआ है। वीणा को रचने से पहले किरीटी वृक्ष को मंत्र पढ़कर पवित्र किया गया था। अर्थात् विशेष उद्देश्‍य से विशेष प्रकार के वृक्ष से लकड़ी निकालने के लिए मंत्र पढ़कर आह्वान किया गया था। यह वृक्ष वन के सभी वृक्षों में शिरोमणि की तरह था, सिरमौर था। अर्थात् ऐसा ही वृक्ष वीणा के लिए उपयुक्‍त था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके कानों में हिमाच्‍छादित चोटियाँ अपने मन की गोपनीय बातें कह रही हों। यहाँ ऊँचाई और एकांत में सन्‍नाटे में अपने आप उभरती सांकेतिक ध्‍वनियाँ अभिप्रेत हैं। एकांत में संबंध भावना अपने आप उभर रही थीं। आस-पास से आकर पेड़ से अटके हुए बादल ऐसे प्रतीत होते थे मानो वे वृक्ष के कन्‍धों पर सोये हुए हों। यहाँ ऊँचाई और फैलाव व्‍यंजित है। वृक्ष की डालियाँ हाथी की सूंड़ के समान मोटी और लंबी थीं। वृक्ष इतना फैला हुआ था कि हिमपात के समय वन में रहने वाले सभी पशुओं के झुण्‍ड अपनी रक्षा के लिए वहाँ आकर ठहरते थे। उसके तने के खोखले हिस्‍से में इतनी जगह थी कि उसमें भालुओं ने अपना बसेरा बना लिया था। उस वृक्ष की खुरदुरी छाल से सिंह अपने कन्‍धे खुजलाकर अपनी खुजली के कारण उत्‍पन्‍न कष्‍ट दूर करते थे। ऐसा भी सुनने में आता है कि उसकी जड़ भूमि के नीचे नाग लोक तक जा पहुँची थी। यह गहराई का सूचक है। वृक्ष की जड़ों से एक विशेष प्रकार की सुगंध निकलती थी। नाग लोक में स्थित होने के कारण जड़ों के आसपास शीतलता विद्यमान थी। सुगंध और शीतलता से आकृष्‍ट होकर वासुकि नाग जड़ से अपने फण टिकाकर सोता था। यहाँ वासुकि सामान्‍य नाग के रूप में वर्णित है। इसलिए इसकी अलग से व्‍याख्‍या अनुचित प्रतीत होती है। वज्रकीर्ति ने किरीटी वृक्ष से वीणा गढ़ने में अपना समूचा जीवन लगा दिया। उसकी यही हठपूर्वक की गई साधना थी। उसने अपना काम पूरा किया और इसी के साथ उसकी साधना भी पूरी हो गयी। अर्थात् उसने जो संकल्‍प लिया था, वह पूरा हो गया। इसके पश्‍चात् उसके जीवन की लीला भी पूरी हो गई। अर्थात् वह अपने पीछे वीणा छोड़ गया। अब वीणा को साधने का काम दूसरे लोग ही कर सकते थे। यहीं पर वज्रकीर्ति नाम के औचित्‍य का उल्‍लेख करना अनुचित न होगा। उस वीणा का निर्माण करने वाले की कीर्ति वज्र की तरह है। देहावसान के पश्चात वह अब अपनी रचना के कारण केवल यश के रूप में रह गया है। वीणा इसका प्रमाण है। ‘असाध्‍य वीणा’ से उसकी समर्पण भावना के बारे में पता चलता है।

राजा वीणा का परिचय देते हुए क्षण भर लिए रुका। अर्थात् पहले कही गई बातें एक प्रवाह में थी। अब वह फिर से, एक लंबी सांस लेकर कहने लगा। ‘लंबी सांस’ नैराश्‍यसूचक है। इसी बात को बताते हुए वह कह रहा है कि मेरे जितने भी जाने-माने कलावन्‍त थे, सभी ने इसे बजाने का प्रयत्‍न किया। लेकिन अब तक कोई भी सफल न हो सका । सबका ज्ञान बेकार सिद्ध हुआ। सबका अभिमान काँच की तरह चूर-चूर हो गया। आज तक कोई भी ज्ञानी-गुणी कहलाने वाला व्‍यक्ति वीणा को साध न सका - स्‍वर संधान न कर सका। अब यह ‘असाध्‍य वीणा’के नाम से ख्यात हो गयी है। लेकिन मुझे अब भी विश्‍वास है कि वज्रकीर्ति ने जो कठोर तपस्‍या की थी वह व्‍यर्थ नहीं था। वीणा से ध्‍वनियाँ अवश्‍य प्रस्‍फुटित होंगी, लेकिन यह तभी संभव हो सकेगा जब उसे बजाने के लिए ऐसा व्‍यक्ति आएगा जिसे वास्‍तव में स्‍वरों में सिद्धि प्राप्‍त हुई हो। वीणा को बजाने के लिए गोद में लेने से आशय है वीणा की ओर वत्‍सल भाव से भरी हुई दृष्टि। वादक के मन में करणीय कर्म के प्रति स्‍नेह भाव होना आवश्‍यक है। राजा ने साधक को तात और प्रियवंद जैसे शब्‍दों से संबोधित करते हुए अनुरोध भरे स्‍वर में कहा कि आप इसे साधने के लिए स्‍वीकार कीजिए। यह आपके सामने रखी हुई है। यहाँ मैं हूँ, यहाँ रानी हैं और यह सामने भरी हुई सभा है। सभा में सभी गर्दन उठाये देख रहे हैं । इससे पता चलता है कि सभी के मन में भाव उमड़ आए हैं। सभी अत्‍यंत उत्‍सुक हैं। सभी अपने मन में एक ही भाव लिए हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वीणा कब सधेगी।

साधक के लिए केशकंबली और गुफा गेह जैसे विशेषण फिर दोहराए गए हैं। आगे के प्रकरण से स्‍पष्‍ट है कि ये दोनों विशेषण साभिप्राय प्रयुक्‍त हुए हैं। साधक ने ऊनी कंबल ओढ़ रखा था। उसने बिना कुछ कहे उस कंबल को उतार कर धरती पर रख दिया। यहाँ ‘धरती’ शब्‍द विस्‍तार का भी व्‍यंजक है। जैसा कि आगे स्‍पष्‍ट होता है। सधी हुई वीणा से नि:सृत संगीत की ध्‍वनियाँ सार्वभौमिक स्‍तर पर होंगी। ध्वनियों का प्रभाव सार्वभौमिक स्‍तर पर होगा। उल्‍लेखनीय है कि पूजा करते समय ऊनी कंबल को पवित्र होने के‍ कारण उपयुक्‍त माना जाता है। अर्थात् करणीय कर्म में पावनता का समावेश है। यह कंबल प्रियवंद ने स्‍वयं तैयार किया था। लगता है जैसे प्रियवंद अपने को अहं के विलयन के लिए तैयार कर रहा हो। साधक ने क्षण भर के लिए अपनी पलकें मूंदी और सांस भीतर की ओर खींचा। अर्थात् वह विचारों के अगले प्रवाह के लिए तैयार हुआ। इसके बाद उसनेवीणा को प्रणाम किया। अर्थात् उसने स्‍वयं को छोटा समझकर अपने स्‍थान से उठकर वीणा को बड़ा समझकर उसे स्‍पर्श करते हुए प्रणाम किया। इसके पश्‍चात् उसने वीणा के तारों को इस प्रकार छुआ जैसे छुआ ही न हो। अर्थात् अत्‍यंत हल्‍के-से-हल्‍के स्‍पर्श की तरह छुआ। साधक ने राजा से धीमे स्‍वर में कहा कि मैं कलावंत होने के अहं से ग्रस्‍त नहीं हूँ। उल्‍लेखनीय है कि राजा ने कलावन्‍त की चर्चा की थी। इसी तरह उसने स्‍वयं को शिष्‍य मानकर गुरु होने के अहं से दूर रखा। राजा ने सिद्ध की चर्चा की थी। साधक ने स्‍वयं को साधक मानकर सिद्ध होने के अहं से दूर रखा। साधक स्‍वयं को जीवन के ऐसे सत्‍य का साक्षी भर मानता है जो अभी तक कहा नहीं गया है। स्‍वयं को साक्षी-द्रष्‍टा- मानने में भी अहं से दूर रहने का संकेत है। रचना वहाँ होती है जहाँ यह लगे कि इस बात को अब तक नहीं कहा गया है। मौलिकता रचना की शर्त है । साधक वज्रकीर्ति, पुराने किरीटी वृक्ष और मंत्रों से शोधित वीणा का ध्‍यान करके बहुत अधिक प्रसन्‍न और भावविभोर हो जाता है। यहाँ प्रयुक्‍त ‘ध्‍यान’ शब्‍द आगे के प्रकरण में ध्‍यान साधना का रूप धारण कर लेता है।

 प्रियवंद अब चुप हो जाता है। अर्थात् वह मौन की ओर उन्‍मुख होने लगता है। सभा में उपस्थित अन्‍य लोग भी मौन धारण कर लेते हैं। साधक वीणा बजाने के लिए वीणा को उठाकर अपनी गोद में रख लेता है। गोद में रखने में वत्‍सलभाव भी विद्यमान है। यह आगे के प्रकरण से स्‍पष्‍ट होता है। फिर धीरे-धीरे वीणा की ओर झुकता है और उसके तारों पर अपना माथा टिका देता है। सभा चकित हो जाती है। लोग सोचने लगते हैं कि कहीं प्रियवंद केशकंबली सो तो नहीं गया था या फिर उसने पराजित होकर वीणा के सामने आत्‍मसमर्पण तो नहीं कर दिया। वास्‍तविकता यह थी कि सभा ही सत्‍य से दूर थी। वाद्य पर झुकना रचना कर्म के प्रतिचित्‍त की एकाग्रता का द्योतक है। यह तो वीणा को साधने के लिए किया जा रहा उपाय भर था। इसलिए ऐसा सोचना उचित नहीं है कि वीणा असाध्‍य है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए कहा गयाहै कि साधक धड़कनपूर्ण नीरवता में मौन धारण किए हुए वीणा को साधने में-संधान करने में - लगा हुआ था। यह कहना अधिक उचित होगा कि वादक अपने को शोधन प्रक्रिया में - खोजने में संलग्‍न किए हुए था। वादक अपने भीतर की गहराईयों में उतरता है और उतरने के क्रम में,अपने अहं से दूर जाकर स्‍वयं को किरीट वृक्ष के प्रति समर्पित करता चला जाताहै। यहाँ रचना के क्षणों में अपने अनुभवों के प्रति समर्पण भावनाद्योतित है। इसलिए कहा गया है कि ऐसा कोई प्रियवंद है जो अपने ‘अहं’ को बनाये रखते हुए मंत्रो से शोधित इस काठ की वीणा के सामने आये। पहले के वादक ऐसा ही कर रहे थे। इसलिए वे निराश हुए अर्थात् रचनाकार को वीणा को साधने के लिए अपने ‘अहं’ से दूर हटना होगा। यह वीणा एक समूचे जीवन-भर की साधना है। इसे कोई यों ही कैसे साध सकता है? जो इसे साधना चाहता है उसे इस बात को भली-भाँति समझना होगा। केशंकबली ‘अहं का विलयन’ करने की प्रक्रिया में राजसभा को भूल चुका था। उसका ध्‍यान अब पूरी तरह से किरीटी वृक्ष की ओर था। वह इस समय एक अकेलेपन में निमग्‍न था। इस एक अकेलेपन को उसने स्‍वयं आमंत्रित किया था। हर साधक की यही नियति है। इसमें वह साक्षी-द्रष्‍टा - होकर रह गया था। उसकी सृजनात्‍मक कल्‍पना में वही किरीटी वृक्ष सजीव रूप में दिखा। वृक्ष की जड़ें वासुकिनाग के फण पर आधारित थीं। यहाँ पर आधार-आधेय संबंध व्‍यक्‍त हुआ है। लेकिन यह दोनो के सम्बंध का व्यंजक है । यह पहले के प्रकरण में नहीं था। वृक्ष पर अटके हुए बादल कंधों पर माथा टिकाकर सोते हुए से प्रतीत होते थे। उसके कानों में हिमाच्‍छादित पर्वत अपने मन की गोपनीय बातें बताते हुए से प्रतीत होते थे। प्रियंवद अब ध्‍यान की अवस्‍था में मन-ही मन स्‍वयं ही मौन की अवस्‍था में किरीटी वृक्ष को संबोधित करने लगा। वह उसे विशाल वृक्ष कहता है। अर्थात् किरीटी वृक्ष महावृक्ष है। सैकड़ों-हजारों बसन्‍त ऋतु की पल्‍लवन और पतझर ऋतु की पतझर ने उसके रूप को नित्‍य संवारा है। अर्थात् महावृक्ष कई सहस्राब्दि का है। वह अपने में बड़ी लम्बी परम्परा आत्मसात् किए हुए है । हर वर्ष इसमें नयी कोंपलें आती गईं और पुराने पत्‍तेझरते गए। परम्परा में पुनर्नवा का गुण होता है । वह रूढ़ि का पर्याय नहीं है । रूढ़ि में जड़ता का भाव निहित है । कितनी ही बार वर्षा ऋतु में बरसती जलधारा ने मानो उसका अभिषेक किया। कितनी ही बार उसके आस-पास घूमते जुगनुओं ने मानो उसकी आरती उतारी। दिन में उसके आस-पास भौंरों की गुँनगुनाहट सुनाई पड़ती थी। रात होते ही झिल्लियों की झंकार ऐसा प्रतीत होती थी मानो वे बिना थके हुए शुभ अवसर पर गाये जाने वाले गीत गाकर सुना रहे हों। अनगिनत अनपहचाने चिड़ि‍योंके समूहों की हर्ष से भरी हुई क्रीड़ायुक्‍त मधुर ध्‍वनि डाली-डाली को कंपा जाती थी। महावृक्ष विशाल शरीर वाला है। वह झारखण्‍ड में और वृक्षों की अपेक्षा पहले जन्‍मा होने के कारण अग्रज तुल्‍य है। उसके सामने ही शेष वृक्ष उत्‍पन्‍न हुए हैं, इसलिए वह आदरणीय है। अन्‍य वृक्षों से उसका संबंध पितातुल्‍य है। अन्‍य वृक्षों से उसका संबंध मैत्रीपूर्ण है। इसलिए वह सखा है। ये सब एक ही वातावरण में रहते हैं। वह अज्ञान के अन्‍धकार को मिटाने के कारण गुरु तुल्‍य है। आवश्‍यकता पड़ने पर उसकी शरण ली जा सकती है। इसलिए वह आश्रयस्‍थली है। वह रक्षक है क्‍योंकि वह वज्रपात, मूसलाधार बारिश, आँधी, तूफान, चक्रवात, ओला, पाला, हिमपात, ठण्‍डइत्‍यादि से बचाता है। ग्रीष्‍म ऋतु में वह बहुत बड़े क्षेत्र में छाया देकर शीतलता प्रदान करता है। वह व्‍याकुल होकर मुखर हुई वन की ध्‍वनियों के समूह गान का साकार रूप है। अर्थात् वह इस प्रकार की ध्‍वनियों को अपने में समोये हुए है। प्रियंवद ध्‍यान में किरीटी वृक्ष से अनुरोध भरे स्‍वर में कहता है कि मैं तुममें विद्यमान ध्‍वनियों को सुनना चाहता हूँ। तुम्‍हें भाव लोक में देखना चाहता हूँ। तुम्‍हें अपने ध्‍यान में लाना चाहता हूँ। जब मैं तुम्‍हें देखूँ तब मेरी पलके न गिरें-एकटक देखता रह जाऊँ । अर्थात् नेत्रों के समक्ष यह कार्य बिना किसी बाधा के संपन्‍न हो। जब मैं तुम्‍हारा ध्‍यान करूँ तब एकदम शांत रहूँ। जब मैं तुम्‍हारा ध्‍यान करूँ तब मैं संयत रहूँ। अर्थात् कला के लिए अपेक्षित मर्यादा का उल्‍लंघन न हो। जब मैं तुम्‍हे देखूँ, तुम्हें ध्‍यान में लाऊं तब तुम मुझसे संलग्‍न रूप में रहो। अर्थात् वादक की उपस्थिति माध्‍यम के स्‍तर पर हो और वह किरीटी वृक्ष से अपनी संलग्‍नता महसूस करे। जब मैं तुम्‍हारा ध्‍यान करूँ तब वाक् रहित अवस्‍था उत्‍पन्‍न हो जाए। अर्थात् अहं वाक् के स्‍तर पर मूक रहे और महावृक्ष की ध्‍वनियाँ वाक् के स्‍तर पर वीणा से मुखरित हों। मैं तुम्‍हें स्‍पर्श करने का साहस कहाँ से प्राप्‍त करूँ? यह वीणा तेरेतने को काटकर बनायी गयी है। इसमें तार बाँधे गए हैं। यदि कोई यह सोचे कि मन में स्‍पर्धा का भाव रखकर अपने हाथों के एक चोट से,अंगुलियों के संवर्तन से तारों में जमे संगीत को छीन सकता है तो इसे उसका भ्रम ही माना जाएगा। अर्थात् विनम्रता अपेक्षित है। होड़ाहोड़ी बेकार है। चोटभर सेस्‍वर सामने नहीं भी आ सकता है। ऐसा प्रयास भी नहीं करना चाहिए। इस संकलित संगीत को रचने में न जाने कितने धड़कते हुए प्राण स्‍वयं रच गए। अर्थात् इसमें देश, कालऔर वातावरण का,जीवनका, जगत का संगीत समाहित है। इसमें बहुत सारी ध्‍वनियाँ हैं। अलग-अलग समयों से जुड़ी हुई ध्‍वनियाँ हैं। दृष्टि में समग्रता अपेक्षित है। तभी संगीत सुनाई पड़ेगा।

 प्रियवंद अब अपनी स्थिति को भिन्‍न रूप में पहचानने लगता है। अब वह स्‍वयं को महावृक्ष की गोद में बैठा हुआ आह्लादित बालक समझने लगता है। यह अहं के विलयन, विनम्रता और आत्‍मीयता का व्‍यंजक‍ है। वह महावृक्ष को तात कहकर पुकारता है। तात तुल्‍य होने से उससे अपेक्षा है कि वह उसे अपनी गोद में संभाले। पिता पुत्र से खुलता है। पुत्र गिरे नहीं, उसे कोई कष्‍ट न हो – पिता को इसका ध्‍यान रहता है। तात कहकर महानता को आदर दिया गया है। वृक्ष की प्रधानता को देखकर यह उक्ति कही गयी है। मेरी हरेक किलकारी तुम्‍हारे रोमांच में निमग्‍न हो जाए। बालक की किलकारी से पिता का रोमांचित होना स्‍वाभाविक है। इससे वह उसके अनुाभवभव की एक-एक भीतरी मुखरता सुन पायेगा और उस पर विचार कर पायेगा। उसे विस्मित होकर अंकित कर पायेगा। मैं तल्‍लीन होकर तुम्‍हारी गोद में झूलते हुए, लोरी सुनते हुए झूमना चाहता हूँ। अर्थात् वत्‍सल भाव भरे स्‍वर में ही महावृक्ष अपने संपूर्ण जीवन को सामने व्‍यक्‍त कर सकता है। लोरी सुनना अहं के विलयन का उपाय है। तुम वीणा में अपनेस्‍वर को व्‍यक्‍त करो। मेरी सांसे तुम्‍हारेस्‍वरों की लय पर भरें, पूरी हों, खाली हों और विश्राम पायें। अर्थात् मेरी सांस और तुम्‍हारी लय में भेद का अभाव हो।

 प्रियवंद निवेदन भरे स्‍वर में कहता है कि तुम वीणा में अपनेस्‍वरों को व्‍यक्‍त करो। इसीलिए यह वीणा रखी हुई है। यह तुम्‍हारा अंग है- इसे तुमसे काटकर बनाया गया है। तुमसे जुड़कर इसकी अपांगता दूर हो जाएगी। तुम मूल शरीर हो। तुम क्षतिरहित हो । तुम अपने आप में भरे हुए हो, इसलिए तुमसे जुड़कर इसकी रिक्‍तता दूर हो जाएगी। तुम नाना प्रकार के रसों के बारे में जानते हो । इसलिए तुमसे जुड़कर इसकी नीरसता दूर हो जाएगी। तुम वीणा में अपनेस्‍वरों को व्‍यक्‍त करो। प्रियवंद अपने अज्ञानता से भरे हुए हृदय में महावृक्ष से जुड़ी हुई स्‍मृतियों और श्रुतियों का आलोक जगाने के लिए निवेदन करता है। वह अतिशय संवेदनशील स्‍वर में वीणा में अपनेस्‍वरों को उतारने के लिए विनती करता है।

 जब प्रियवंद के अहं का विलयन हो जाता है तब महावृक्ष से जुड़ी हुई स्‍मृतियाँ मुखरित हो उठती हैं। ध्‍यानमग्‍नप्रियंवद की कारयित्री प्रतिभा सक्रिय हो उठती है। उसकी सृजनात्‍मक कल्‍पना ध्‍यान के माध्‍यम से सक्रिय हो उठती है और इसी के साथ महावृक्ष से जुड़ी हुई स्‍मृतियाँ और श्रुतियाँ मूर्त रूप धारण करने लग जाती हैं।

 कविता के अगले चार अनुच्‍छेदों में महावृक्ष से जुड़ी हुई स्‍मृतियों और श्रुतियों का वर्णन है। ये ध्‍वनि से भरे हुए दृश्‍य इस प्रकार हैं : वन में बादलों का घिरना, बिजली का कौंधना और फिर वर्षा की बूँदों का पटपटाते हुए गिरना। आधी रात के पश्‍चात् महुए का चुपचाप टपक कर गिर पड़ना। चिड़ि‍या के बच्‍चों का चौंक कर चिहुँक उठना। वन में झरने का तेजी से लहराता हुआमधुरस्‍वर और उसका शिलाओं पर से बहते हुए इस प्रकार से निकल जाना मानो जल पत्‍थरों को दुलार रहे हों, उन्‍हें वत्‍सल भाव से स्निग्‍ध कर रहे हों। पर्वतीय प्रदेश में ढोल की आवाज का कोहरे में से छनकर सुनाई पड़ना। गड़रिये का उदास स्‍वर में बाँसुरी बजाना। कठफोड़े पक्षी का ठेका अर्थात् चोंच से काठ में ठक-ठक करके खोदना। फुलसुंघनी पक्षी की आतुरता भरी फुरकन । सूर्य के प्रकाश में ओस बूँदों का ढुलकना – यह इतना कोमल और तरल था कि मानो झरते-झरते पारिजात वृक्ष का पुष्‍प बन गया हो। शरत ऋतु के कारण भरे हुए निर्मल जल के तालाबोंमें लहरों की सरसर करती ध्‍वनि। क्रौंच पक्षी की क्रें-क्रें ध्‍वनि। टिटि‍हरियों की लंबी कांद अर्थात् कूदना। पंख सहित वाण के समान उड़ते हंस और मादा बगुले। चीड़ के वनों में गंध से अंधे बने उन्‍मत्‍त पतिंगों का जहाँ-तहाँ टकराना। जल प्रपात का प्रदीर्घ हुआ एकस्‍वर। झींगुर, मेंढक, कोयल, पपीहा की झंकार और पुकारों के ठहरने में सृष्टि की सांय-सायं का सुनाई पड़ना। चिंघारते हाथियों के झुण्‍ड की तरह दूर पहाड़ों से चली आती काले मेघों की बाढ़।चढ़ती हुई बहने वाली छोटी सी नदी की घरघराहट और रेतीले किनारे का छप-छड़ाप कर गिरना। आंधी की फुफकार, उष्‍णता और पेड़ों का अरअराकर टूट-टूट कर गिरना। ओलों की करारी चपेट। पाला जम जाने के कारण सूखी घासों का तनी हुई छुरी की तरह तड़कना। नर्म धूप में कड़ाके की ठण्‍ड में सूखकर अकड़ी हुई मिट्टी का शनै: शनै: रिसना अर्थात् भरना। हिम और पाले के गिरते फाहों द्वारा चुपचाप घायल धरती के घावों का सहलाया जाना। घाटियों में खिसककर गिरते चट्टानों की गूंज और उनकागंभीर गूँज और प्रतिध्‍वनि से भर जाना और इसके पश्‍चात् सांस का खो जाना अर्थात् ध्‍वनि की ओर उन्‍मुखता न होने जैसी अवस्‍था का उत्‍पन्‍न हो जाना और शनै: शनै: नीरवता अर्थात् नि:शब्‍दता का छा जाना। हरी-भरी घाटी में छोटे-छोटे पेड़ों की आड़ में तालाब पर एक निश्चित समय में वन के व्‍यग्र पशुओं की अनेक प्रकार की भूख-प्‍यास शांत होने के पश्‍चात् की तृप्ति से उत्‍पन्‍न पुकारें-कुछ की गर्जना, कुछ का घुरघुराना, कुछ का चीखना, कुछ का भौंकना, कुछ का हुंकारी भरना, कुछ का चिल्‍लाना। जलपक्षी का कमल और कुमुद के पत्‍तों पर दबे पाँव तेजी से दौड़ने की आवाज। यात्री के घोड़े की व्‍याकुल टाप। भैंसों के भारी खुर की चंचलतारहित धीर थाप। क्षितिज से भोर की पहली किरण का ऊपर उठकर ओस की बूँद को ताकना और उस क्षण की सहसा चौंकने की तरह सिहरन। दोपहर में घास-फूलों का दिखाई दिए बिना ही खिल उठना और फिर उन पर असंख्‍य मधुमक्खियों का झूमते हुए गुंजार करना। दोपहर के उस लंबे देरी भरे क्षण का नींद की खुमारी से युक्‍त होकर ठहर सा जाना। शाम में तारों की टिमटिमाहट का इस प्रकार झरना कि उसे छुआ न जा सके – यह ऐसा था मानो आकाश में तरल अर्थात् करूणा से आप्‍लावित नेत्रों से युक्‍त ठिठकी हुई असंख्‍य, वत्‍सयुक्‍त, युवती माताएँ आशीर्वाद दे रही हों- ऐसे बीच के क्षण में पलक मात्र के समय में रोमांचित होकर लीन हो जाना- मुझे याद है।

साधक हरेक चित्र से भौंचक्‍का होता चला जाता है। हरेक चित्र से वह जड़वत होता जाता है। उसे ध्‍वनि की प्रतीति होती है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ध्‍वनि का हर कंपन उसे उससे ही सोखता जाता है। अर्थात् वीणावादक का अहं विलीन होता जा रहा है। उसे वायु की तरह स्‍वर से भरी हुई अवस्‍था में उड़ते चले जाने जैसी प्रतीति होती है। अर्थात् वीणावादक का अहं विलीन होता जा रहा है और उसने स्‍वयं को रचना के स्वरों को सुननेकेलिए प्रस्‍तुत कर लिया है। प्रियंवद की भावनाओं में बिंब विद्यमान हैं। वहअपने अहं से दूर चला गया है। वह ध्‍वनियों को सुन रहा है। उसका अहं स्‍वर में विलीन हो चुका है। वह अपने अहं से इतना दूर और अलग हो गया हैकि उसका अहं दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रहा है। प्रियवंद मन-ही-मन निवेदन भरे हुए स्‍वर में संबोधन करते हुए कहता है कि हे विशाल तरु, वन की स्‍मृति को मूर्त करने वाले, स्‍वरों को संबल देने वाले, स्‍वरमय सृष्टि को व्‍यंजित करने वाले, रस की बाढ़ ! मुझे क्षमा करो । मेरी तुच्‍छता को तुम भूल जाओ। तुम विराट हो और मैं तुच्‍छ होकर भी विराट का आह्वान कर रहा हूँ। इन पंक्तियों में नम्रता की व्‍यंजना हुई है। मुझे आश्रय दो । मेरे अहं को ढंक दो। अर्थात् मेरा अहं दृष्टिगोचर न हो। तुम्‍हीं दिखो। मेरे अहं पर छा जाओ। अर्थात् मेरा अहं तुम्‍हारे समक्ष दिखाई न दे। तुम्‍हीं दिखो। तुममें ही इस तरह की सामर्थ्‍य है। इसलिए मैं तुम्‍हारी शरण में हूँ। तुम मेरे अहं को अपने सोये हुए स्‍वर रूपी सागर के ज्‍वार में डूबो दो। केवल तुम्‍हारा ही स्‍वर सुनाई देता रहे। मेरे अहं का स्‍वर तुम्‍हारे स्‍वर में विलीन हो जाए। तुम अपनी ध्‍वनियों के साथ वीणा में आओ। मेरे अहं को भुला दो। तुम वीणा के तारों में अपनी ध्‍वनियों के साथ अवतरित होओ। तुम आप से आप गाओ और इस अवस्‍था में मेरा अहं पूरी तरह विलीन रहे। अपनी डालियों पर या अपने आस-पास रहने वाले पक्षियों के समूह की चहचहाहट को गूंजित करो। अपनी छाया में पले हुए हिरणों की छलांगों को गान के मान में बांधकर अपनी छाया और धूप, वर्षा और पवन, पल्‍लवित होने और पुष्‍प खिलने की लय पर अपने जीवन के संचय को गतिमय कर अपनी कला-प्रतिभा को स्‍वर दो। तुम वीणा के माध्‍यम से अपनी ध्‍वनियों को व्‍यक्‍त करो। तुम ध्‍वनियों में सामीप्‍य प्राप्‍त करो। अर्थात् तुम स्‍वर में प्रत्‍यक्ष होओ। वीणा और विशाल तरु के संबंधों को ऊपर उल्लिखित किया जा चुका है। तरु वीणा से जुड़ेगा तभी ध्‍वनि नि:सृत होगी। तुम स्‍वयं को वीणा के स्‍वर में खो दो। मैं अपने अहं को विलीन कर तुम्‍हें आमंत्रित कर रहा हूँ। वीणा के माध्‍यम से तुम अपनी सत्‍ता दर्शाओ। वीणा के माध्‍यम से तुम अपनी ध्‍वनियों को व्‍यक्‍त करो।

प्रियंवद काअहं जब पूरीतरहविलीन हो चुका तब वीणा बज उठी,उसमें से स्वर निकल पड़े । जैसे ही वीणा सधी ,बजी , धुन निकली वैसे ही राजा मानो तन्‍द्रा से जागा। अर्थात् वीणा का सधा जाना एक नई घटना थी। यहाँ ‘राजा’शब्‍द शासक के अर्थ में प्रयुक्‍त हुआ है, जैसा कि आगे के प्रकरण से स्‍पष्‍ट है। राजा ने देखा कि समाधि में लीन साधक के हाथों में गति आ गई थी – उसकी ऊँगलियाँ वीणा के तारों पर काँप रही थीं,वीणा में से धुन निकल रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि लंबे समय से सोये हुए व्‍यक्ति की तरह वीणा जगकर मस्‍ती या खुमारी भरी अंगड़ाई लेते हुए जाग उठी हो। अब धीमे स्‍वर रूपी शिशु किलकारी भरने लगे थे। साधक के अहं के विलीन होने की स्थिति में वीणा से ध्‍वनियाँ प्रस्‍फुटित होने लगी थीं। जाल बुनने वाले व्‍यक्ति की तरह, असत् में सत् का आभास कराने वाले व्‍यक्ति की तरह साधक चुपचाप आगे बढ़ता हुआ सधे हुए हाथों से धीरे-धीरे सुनहले तारों का जाल डालता जा रहा था। सभी उस धुन में निमग्‍न हो उठे थे। इतने में अचानक वीणा झनझना उठी। अर्थात् वीणा मंद्र गंभीर स्‍वर से ऊँचे और मुखरित स्‍वर में आ पहुँची। ध्‍वनियों के नि:सृत होने के कारण साधक की आँखों में विद्यमान शीतलता पिघलकर ज्‍वाला के समान दीप्ति में बदल गई। नि:सृत ध्‍वनि को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों के तन में बिजली की तरह रोमांच दौड़ गया। अर्थात् संगीत सुनकर श्रोता अतिशय रोमांचित हो उठे। संगीत वीणा में उतर चुका था। यह संगीत मौलिक रचना की तरह स्‍वत: स्‍फूर्त ढंग से उत्‍पन्‍न हुआ था। अहं केविलीन होने पर यह संभव हुआ था। इस संगीत से संपूर्ण ज्‍योतिर्मय ब्रह्मा का अखण्‍ड मौन सुषुप्तावस्था में प्रतीत हो रहा था। यह संगीत मौन की स्थिति में ही संभव हुआ था अर्थात् अहं को विलीन कर वीणा में सोये संगीत को जगाया गया था। यह मौन व्‍यक्ति के बाहर भी विद्यमान है और भीतर भी विद्यमान है। वादक यह जानता था।

संगीत सरोवरमें सभी श्रोताओं ने एक साथ डुबकी लगाई। अर्थात् यह संगीत सभी श्रोताओं के लिए सुलभ था। सभी एक साथ उसे सुनने में लीन थे।संगीत में सब की तल्‍लीनता, तन्‍मयता देखते ही बनती थी। लेकिन संगीत सुनने के बाद सभी श्रोता अलग-अलग अकेले तैर कर पार हुए। अर्थात् रचना को लेकर सब की अपनी-अपनी उपलब्धियाँ हैं, सबके अपने-अपने अनुभव हैं, सबकी अपनी-अपनी अनुभूत प्रतिक्रियाएँ हैं। हर श्रोता के अनुभव में विलक्षणता थी। अनुभूति का कारण संगीत था, तो विलक्षणता का कारण व्‍यक्ति स्‍वयं थे। राजा को संगीत की भिन्‍न प्रकार से अनुभूति हुई। अर्थात् वहाँ उपस्थित श्रोताओं पर जिस प्रकार से संगीत का प्रभाव पड़ा, राजा पर पड़े हुए संगीत के प्रभाव में भिन्‍नता थी। राजा को लगा कि यश के शरीर के रूप में विद्यमान जय की देवी वरण करने के लिए माला लिए हुए शुभ अवसर पर गाये जाने वाले गीत गा रही हैं। कहीं दूर नगाड़ाबज रहा था। नगाड़ा बजना विजय का सूचक है। राजा को अब राज मुकुट ग्रीष्‍म ऋतु में खिले हुए शिरीष के पुष्‍प की तरह प्रतीत हो रहा था। अर्थात् जिम्‍मेदारियाँ अब बोझ नहीं प्रतीत हो रही थीं। जीवन में विद्यमान किसी के प्रति जलन का भाव रखना, बड़ी-बड़ी महत्‍वाकांक्षाएँ रखना, दूसरे के प्रति बैर भाव रखना, केवल प्रशंसा ही प्रशंसा – चाहे वह झूठी ही क्‍यों न हो- सुनने की इच्‍छा रखना – ये सभी बातें उसके व्‍यक्तित्‍व से पुराने वस्‍त्र की तरह झड़़ कर गिर गए। उसके जीवन रूपी स्‍वर्ण में निखार आ गया था। यहाँ जीवन के शोधन प्रक्रिया से गुजरने का संकेत है। श्रोता के रूप में यह एक उपलब्धि है। अब जीवन पहले की अपेक्षा अधिक मूल्‍यवान हो गया था। राजा ने इस जीवन को धर्म भाव के साथ न्‍योछावर कर देने के लिए संकल्‍प लिया। यहाँ ‘धर्म’ ‘धारयति इति धर्म:’ धारण करना के अर्थ में प्रयुक्‍त हुआ है। रानी को संगीत के प्रभाव की भिन्‍न प्रकार से अनुभूति हुई। रानी के ऊपर मोह के बादल छा गए थे, वह अब छँट गए थे। बादलों के मध्‍य से सत्‍य को दर्शाने वाली विद्युत की त्‍वरायुक्‍त कौंध मानो कह रही थी कि ये तुम्‍हारे मणि – माणिक्‍य, कण्‍ठ में पहना जाने वाला हार, शीतलता प्रदान करने वाला कोमल रेशमी वस्‍त्र, कमर में पहनी जाने वाली तगड़ी की घुघरिया – ये सभी अंधकार के कण हैं। अनन्‍य प्‍यार ही जीवन का प्रकाश है। इस अनन्य प्‍यार की विद्युत की रेखा रूपी लता रस से भरे हुए मेघ को घेरती रहती है। यहाँ दाम्‍पत्‍य प्रेम की व्‍यंजना हुई है। वही लता उसकी छाती पर थिरक कर निश्चिन्त होकर, सहज विश्‍वास से भरी हुई दुबक कर सो जाती है। रानी ने अपने मन में उसी एक प्‍यार को साधने का संकल्‍प लिया। अर्थात् गार्हस्‍थ्‍य जीवन में प्रेम को साधना से जोड़ा गया है। ‘अनन्‍य’ का अर्थ है जहाँ अन्‍य न हो। ऐसे प्‍यार में अन्‍य के लिए समाई नहीं है।

सभा में उपस्थित अन्‍य लोगों को भी संगीत के प्रभाव की भिन्‍न-भिन्‍न प्रकार से अनुभूति हुई। किसीकोवह संगीत प्रभुओं का कृपा व्‍यंजक वाक्‍य प्रतीत हुआ तो किसी को डर से मुक्ति की आशा बंधाने वाला जैसा प्रतीत हुआ। किसी को भरी हुई तिजोरी में सोने की खनक जैसी प्रतीति हुई। किसी को नयी बहू की सहमी हुई सी पायल की ध्‍वनि जैसी प्रतीति हुई तो किसी को खुले आसमान में उड़ती हुई चि‍ड़ि‍या की चहचहाहट जैसी प्रतीति हुई। किसी को मंडी की भीड़भाड़ मेंवस्‍तु खरीदने वालों की होड़ा-होड़ी से भरी बोलियों जैसी प्रतीति हुई। किसी को नियत मात्राओं पर हथेली से स्‍वर उत्‍पन्‍न करने की तरह स्‍वर लय से युक्‍त घंटा की ध्‍वनि जैसी प्रतीति हुई। किसी को लोहे पर सधे हथौड़े की समान अंतराल पर पड़ती हुई चोट जैसी प्रतीति हुई। किसी को लंगर पर खुलने के लिए कसमसा रही, बँधी हुई नौका पर लहरों की अविराम थपक जैसी प्रतीति हुई। किसी को पगडंडी पर चमड़े से हाथ के बनाए हुए जूतों की रूद्ध आवाज जैसी प्रतीति हुई । किसी को सिंचाई के लिए बने हुए नाले की कटी हुई मेड़ से बहते हुए जल की छुल-छुल जैसी प्रतीति हुई। किसी को नट्टिन के एड़ी के घुघरूओं की तान अर्थात् संगीत की विशेष कम्‍पन जैसी प्रतीति हुई तो किसी को युद्ध का ढोल जैसा प्रतीत हुआ। किसी को सांध्‍यकाल में अपने घर की ओर धूल उड़ाते हुए लौट रहे गायों के गर्दन में बंधी घंटियों की हल्‍की–हल्‍की टुनटुनाहट जैसी प्रतीति हुई तो किसी को डमरू के विघटन व्‍यंजक स्‍वर जैसी प्रतीति हुई। किसी को जीवन में जागरण के क्षण की पहली अंगड़ाई जैसी प्रतीति हुई लेकिन किसी कोविकरालकाल के सर्वत्र प्रसरित होने जैसी प्रतीति हुई।

 कह सकते हैंकिश्रोताओं के ‘तथता स्‍वरूप चित्‍त’ में इस तरह की ध्‍वनियों की प्रतीति हुई। संगीत के प्रभाव के कारण इस प्रकार की प्रतीति हुई। इस प्रतीति का संबंध उनके चित्‍त से था, इसलिए उन्‍होंने इसे अपने स्तर से अनुभव किया। उनमें ही इस प्रकार की प्रतीति की संभावना थी। इस तरह इससे इस प्रश्‍न का उत्‍तर भी प्राप्‍त हो जाता है कि पाठक की अनुभूति अद्वितीय क्‍यों होती है। कवि ने इस रचना में इस तथ्‍य को व्‍यंजित किया हैकि प्रत्‍येक पाठक की अनुभूति अनोखी होती है।

 संगीत में सभी श्रोता इस तरह मग्‍न हुए जिस तरह सरोवर में उत्‍साह के साथ डुबकी लगायी जाती है, उसमें क्रीड़ा के समय तैरने की सी अनुभूति हुई। संगीत का प्रभाव सम्‍मोहन सा था। इसका प्रमाण यह है कि लोग झपकियाँ लेने लगे थे। उनमें आत्‍मविस्‍मृति की सी स्थिति उत्‍पन्‍न हो गई। उनकी अलग सत्‍ता विलीन हो गई थी।सभी संगीत के वश में होकर रह गए थे। सुनते समय जड़वत होकर रह गए थे। संगीत सुनते समय सबका अस्तित्‍व जागृत था। संगीत के कारण सबका व्‍यक्तित्‍व समन्वित था। सबका व्‍यक्तित्‍व संगीत में विलीन होकर रह गया था।

 वीणा सधने के पश्‍चात् फिर से मौन हो गई। अर्थात् वादन कर्म समाप्‍त होने के बाद एक बार फिर से वादक जैसी ही प्रक्रिया घटित होगी, तभी पुन: वीणा सध पायेगी। वीणा के सधने जैसी घटनाएँ बारम्‍बार घटित होती रहेंगी, लेकिन इनमें उपरोक्‍त प्रक्रिया के अभाव के कारण काल का अंतराल लम्‍बा हो सकता है। कवि ने कविता के अंत में युग के पलटने जैसी सूचना को व्‍यंजित किया है। यह घटना एक युग में घटित हुई थी। उल्‍लेखनीय है कि वीणा के बनने और सधने के बीच का समय एक लंबा अंतराल लिए हुए था। महान रचना में “युग शिल्पी संगीत” की तरह युग को पलटने की सामर्थ्य होती है ।यह भी यहां व्यंजित है ।

राजा ने प्रियंवद को साधुवाद किया और फिर प्रसन्‍न होकर सम्‍मान करने के लिए सिंहासन से उठकर आगे बढ़ा। वीणा के सधने से प्रसन्‍न होकर रानी ने प्रियंवद को रत्‍नों की सात लड़ि‍यों वाली माला अर्पित की। सभा में उपस्थित श्रोताओं ने प्रियवंद को विह्वल भरे स्‍वर में धन्‍यवाद किया, और उसे संगीत के स्‍वरों को जीत लेने वाला व्‍यक्ति बताया। प्रियंवद ने अपनी गोद में से वीणा को धीरे से नीचे रखा और उसे ढंक दिया। इसके पश्‍चात् वह वहाँ से उठ खड़ा हुआ। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि गोद में सोये बच्‍चे को वत्‍सलभाव युक्‍त आँखों से दुलार करती हुई विमोहित माँ वहाँ से हट गयी हो। यहाँ वीणा शिशुवत् है और प्रियंवद विमोहित माँ की तरह ! प्रारंभ में प्रियंवद शिशुवत था। प्रियंवद ने सम्‍मानवश अपनी ओरआते देख राजा का निषेध किया और कहा कि वीणा को साधने के लिए यदि आप मुझे यश देना चाहते हैं तो यह ठीक नहीं है। वादकने वीणा को साधते समय अपनी अलग सत्‍ता के दोष को दूर कर दिया था। उससे पहले के वादक ऐसा नहीं कर पाये थे। वह अपनी व्‍यक्ति सत्‍ता से संबद्ध नहीं था। वीणा को साधते समय उसका हृदय व्‍यक्तिगत विशेषता से रहित था, शुद्ध था और किसी भी प्रकार के बंधन से मुक्‍त था। इसी बात को बताते हुए प्रियवंद कह रहा है, मैं स्‍वयं अपने अन्‍त: जगत् और बहि: जगत में विद्यमान शून्‍य में निमग्‍न हो गया था। वीणा के माध्‍यम से स्‍वयं को मैंने सब-कुछ को समर्पित कर दिया था। श्रोताओं ने जिस रचना स्वर को सुना वह न मेरी थी न वीणा की थी। वह तो सब-कुछ की तथता थी, सत्‍यता थी, वास्‍तविकता थी। महावृक्ष का तात्‍विक अनुभव ही रचना की अनुभूति का आलंबन बन कर वीणा में व्‍यक्‍त हुआ था। प्रियवंद के आंतरिक जगत और बाह्य जगत में अनुभूत महामौन और महाशून्‍य की स्थिति में संगीत की अनुभूति व्‍यक्‍त हो सकी थी। रचना की अनुभूति को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखा जा सकता- अत: वह अखण्‍ड है।ऐसा भी नहीं है कि कोई इसके बारे में जाने और फिर वह दूसरे को बताए और फिर बताए हुए को वह मान ले। अपनी अनुभूति के माध्‍यम से इसके बारे में जाना जा सकता है- अत: वह अप्राप्‍त है। रचना की अनुभूति ऐसी नहीं है कि उसे भौतिक वस्‍तुओं की तरह प्राप्‍त कर लिया जाए। उसे अनुभूति के द्वारा ही प्राप्‍त किया जा सकता है। लेकिन वह भौतिक वस्‍तुओं की तरह ठोस है, क्‍योंकि वह अनुभूति का विषय बनकर उपस्थित होता है।इस दृष्टि से वह द्रवणशीलता से विरहित है। रचना से प्राप्‍त अनुभूति को तर्क या प्रमाण से सिद्ध नहीं किया जा सकता है- इसको मापा नहीं जा सकता। अत: वह अप्रमेय है। रचना की अनुभूति सबमें नि:शब्‍द रूप में गायन के रूप में विद्यमान है।

 इतना कहते हुए प्रियवंद केशकंबली ने राजा को नमस्‍कार किया और मुड़कर अपना कम्‍बल लेकर अपने गुफा रूपी घर की ओर चल दिया। सभा भी विसर्जित हो गई। सभी लोग अपने-अपने काम में लग गये। अर्थात् रचना जीवन की ओर उन्‍मुख करने वाली थी। राजा अपने काम में लग गया। रानी अपने काम में लग गई और अन्‍य लोग भी अपने-अपने काम में लग गए। वीणा को सधे हुए एक समय बीत गया । वर्तमान काल के पाठक भूतकालीन घटित घटना से उत्‍पन्‍न अनुभूति से बाहर आ गए। उन्‍हें इस क्रम में किसी तरह के व्‍याघात की अनुभूति नहीं हुई। अर्थात् यह अतीत से सम्बद्ध घटना है । इसका वर्तमान से लेना -देना नहीं है -ऐसा कुछ अनुभव नहीं हुआ । रचना से प्राप्त अनुभूति का स्वभाव ही द्वंद्वात्मक होता है ।उसमें अतीत और वर्तमान के विवेक का समन्वित रूप विद्यमान रहता है । कवि अब पाठकों को सीधे ही संबोधित करने की अवस्‍था में आ जाता है। वह कहता है कि इस घटना को सहृदय के समक्ष ला चुकने के पश्चात उसकी वाणी ने मौन धारण कर लिया है। इस तरह मौन से चलकर स्‍वर अथवा स्‍वर के स्‍तर पर पहुँचकर रचना पुन: मौन की ओर लौट जाती है। इसे वाणी के माध्यम से बताया जाता है । इसे बताने का अन्य उपाय नहीं है ।संगीत की रचना प्रक्रिया और शब्‍दविधान प्रक्रिया में कोई तात्विक अंतर नहीं है । ‘असाध्‍य वीणा’ रचना प्रक्रिया के मर्म का उद्घाटन करती है। समर्पण इसका बीज शब्‍द है। यह समर्पण रचना के लिए है।

 ‘असाध्‍य वीणा’ में अज्ञेय ने रचना के संदर्भ में अहं के विलयन के महत्‍व को प्रतिपादित किया है। उनका यह प्रतिपादन कविता के रूप में है। प्राचीन भारतीय साहित्‍य परंपरा में यह सिद्धांत प्रयुक्‍त होता चला आ रहा था। भारतीय साहित्‍य की एक विशेषता के रूप में इसे देखा जाता है। अहं के विलयन के पश्‍चात् वीणा असाध्‍य नहीं रह पाती।

 इस कविता में मौन के महत्‍व को बड़े ही सूक्ष्‍म स्‍तर पर प्रतिपादित किया गया है। वीणा सधने से पहले मौन की स्थिति दर्शायी गई है। वीणा सध चुकने के बाद भी मौन की स्थिति दर्शायी गई है। कविता में ध्‍वनियाँ मौन की पृष्ठभूमि में ही अभिव्‍यक्‍त होती हुई दिखाई गई हैं। मौन के रचनात्‍मक उपयोग की दृष्टि से यह कविता उल्‍लेखनीय है। कवि ने इस रचना में इस तथ्‍य को भी व्‍यंजित किया है कि हर पाठक की अनुभूति अनोखी होती है।

इस कविता के आधार पर अज्ञेय प्रकृति के कवि के रूप में सामने आते हैं। इस कविता का अधिकांश प्रकृति से गृहीत है। ‘असाध्‍य वीणा’ में बिंबो की बहुतायत है। इस आधार पर यह कविता हिंदी काव्‍यधारा के अन्‍तर्गत विशेष स्‍थान रखती है। यह कविता बहुरंगी जीवन के विविध चित्रों से भी समन्वित है। विविध पाठकों की प्रतिक्रियाएँ इसकी साक्षी हैं। इससे यह कविता प्रतिपादन ग्रंथ या कलावादी होने के आभास से बच जाती है।

 अहं के विलयन का उद्देश्‍य है रचना !रचना में रचनाकार विद्यमान रहता है। रचनाकार दृष्टि-बिंदु के स्‍तर पर भी रचना में विद्यमान रहता है। अज्ञेय रचनावली में इस व्‍यक्तित्‍व को पहचाना जा सकता है।

 ‘असाध्‍य वीणा’ में संवेदनशील कवि का कौशल प्रकट हुआ है। यह कविता अज्ञेय की उत्‍कृष्‍ट कविताओं में से तो है ही, हिंदी साहित्‍य की भी उत्‍कृष्‍ट कविताओं में से है। बीसवीं शताब्‍दी के छठवें दशक में मुक्तिबोध की ‘अंधेरे में’ कविता के साथ ही ‘असाध्‍य वीणा’ का भी उल्‍लेख अनिवार्यत: किया जाता है। ‘असाध्‍य वीणा’ एक अतुलनीय कविता है। रचना के स्‍तर पर ‘असाध्‍य वीणा’ बेजोड़ है। वीणा कैसे सधी ?- इसी बिंदु पर कवि रचने के प्रति आकर्षित हुआ। यही ‘असाध्‍य वीणा’ का बीज है। वीणा सधने का रहस्‍य बताने में ही कविता की महत्‍ता का मर्म छिपा हुआ है। स्रोत कथा -द टेमिंग अव हार्प -और असाध्य वीणा में समान स्‍थल गिनती के हैं। इससे ‘असाध्‍य वीणा’ की महत्‍ता में कोई कमी नहीं आती। भोलाभाई पटेल ने इसे दर्शाया है।

मुक्तिबोध ने अंधेरे में के माध्यम से परम अभिव्यक्ति को खोजने का प्रयत्न किया है ।परम अभिव्यक्ति सभी आत्माभिव्यक्तियों का समुच्चय है,उसमें सारी आत्माभिव्यक्तियाँ लीन हो सकती हैं । परम अभिव्यक्ति में सबकी भावनाएँ अभिव्यक्ति पाती हैं या उसमें सब की भावनाओं की अभिव्यक्ति की सम्भावना होती है ! लेकिनकोई महाकविपूरी तरह से सब की भावनाओं को अभिव्यक्त कर सका है-ऐसा नहीं दिखता है ,किसी महाकवि में सब की भावनाओंको अभिव्यक्त करने की सम्भावना दिखाई पड़ी हो -ऐसा भी नहीं दिखता है ।हाँ,यह ऐसाकाम है जिसके लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए ,प्रयत्न होते रहना चाहिए ।यही इष्ट अर्थ होना चाहिए ।महाकवि के लिए आदर्श यही हैं ,महाकवि का यथार्थ भी यही है! मुक्तिबोध अपनी शैली में इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत दिखायी पड़ते हैं और अज्ञेय अपनी शैली में इसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत दिखायी पड़ते हैं ।अज्ञेय की शैली अलग है । वीणा में अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से हुई है । संगीत में सात स्वर होते हैं ।इन्हीं सात सुरोंके “विस्तार और प्रस्तार में सृष्टि की संपूर्ण अनुभूति समायी हुई है”।वीणा से स्वर निकलते दिखाए गए हैं ।निखिल सृष्टि “अपने विभिन्न स्वरों में,नाद में गूंज करके आती है“। अज्ञेय कीमौलिकता इसी में है ।रामस्वरूप चतुर्वेदी ने दोनों कवियों की कविताओं में निहित समानता को लक्षित किया है । दोनों में बड़ा अंतर यह है कि असाध्य वीणा की संरचना में प्रगीतात्मकता है ।“अंधेरे में” की संरचनामें नाटकीयता है ।लेकिन इससे असाध्य वीणा की मूल्यवत्ता कम नहीं हो जाती!

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. विद्यानिवास मिश्र :रीति विज्ञान,राधाकृष्ण प्रकाशन

2. रामस्वरूप चतुर्वेदी :नयी कविताएँ :एक साक्ष्य,लोकभारती प्रकाशन,इलाहबाद,संस्करण :1993

3. रामस्वरूप चतुर्वेदी :अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या,भारतीय ज्ञानपीठ,चौथा संस्करण :2000

4. राम स्वरूप चतुर्वेदी : प्रसाद -निराला -अज्ञेय ,लोकभारती प्रकाशन ,इलाहबाद ,प्रथम संस्करण :1989

5.नंदकिशोर आचार्य :अज्ञेय की काव्य तितीर्षा ,वगदेवी प्रकाशन,बीकानेर,परिवर्धित संस्करण :2001

6. रामकमल राय :अज्ञेय :सृजन की समग्रता,लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद,प्रथम संस्करण :2003

7.भोलाभाई पटेल :अज्ञेय :एक अध्ययन,वाणी प्रकाशन,द्वितीय संस्करण,2002

8.नामवर सिंह :साहित्य की पहचान,(सम्पादक -आशीष त्रिपाठी),राजकमल प्रकाशन, पहला सं.: 2012

9.ज्ञानेंद्रपति :समकालीन जनमत,संयुक्तांक,अक्तूबर-नवम्बर,2016

10. सम्पादक रमेश चंद्र शाह :असाध्य वीणा और अज्ञेय,नैशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली,संस्करण :2002

11.कवि नायक अज्ञेय साक्षात्कार:इला डालमिया कोइराला,नीलिमा माथुर , प्रभात प्रकाशन,दिल्ली, 2002